प्रकाशक :—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक :—
नेमीचन्द बाकलीवाल
बाकलीवाल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

—: समयसारजी की स्तुति :—

हरिगीत

संसारी जीवनां[1] भावमरणो[2] टालवा[3] करुणा करी.
सरिता[4] वहावी[5] सुधा तनीं[6] प्रभु वीर तें[7] संजीवनीं[8] ।
शोषाती देखी सरितनें[9] करुणाभीना[10] हृदये करी[11],
मुनिकुंद संजीवनीं समयप्राभृत तनें[12] भाजन भरी ॥

अनुष्टुप्

कुन्दकुन्द रच्युं[13] शास्त्र सांथिया अमृते[14] पूर्या[15],
ग्रन्थाधिराज तारामां[16] भावो ब्रह्मांडनां[17] भर्या[18] ।

शिखरिणी

अहो ! वाणी तारी[19] प्रशमरस भावे[20] नीतरती[21],
मुमुक्षुने पाती[22] अमृतरस अंजलि भरी भरी ।
अनादिनी मूर्छा विष तनीं त्वराथी[23] उतरती,
विभावेथी[24] थंभी[25] स्वरुप भणी[26] दोड़े परिणती ॥

---

१. जीवोंके, २ मिथ्यात्वादिभावरूपी मरण, ३ दूर करनेके लिये, ४. नदी, ५ प्रवाहित करी, ६. की, ७ आपनें, ८ भावमरणको नाश करनेवालो सजीवनी बूटी, ९ नदीको, १० करुणा से भरे हुवे, ११ हृदय द्वारा, १२. के, १३ रचना करी, १४ श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य, १५ पूरा, १६ तेरेमे, १७ समस्तलोकके; १८ भरे, १९ तेरी, २० भावोंसे, २१ छलकती है, २२. पिलाती, २३. अति शीघ्रतासे, २४ विभावोंसे, २५ रुककर २६ स्वरूपकी ओर,

शार्दूल विक्रीड़ित

तूं छे[1] निश्चयग्रन्थ, भङ्ग सघला[2] व्यवहारना भेदवा[3]
तूं प्रज्ञाछीणी[4] ज्ञान ने[5] उदयनी संधि सहू[6] छेदवा[7] ।
साथी साधकनो[8], तूं भानु जगनो[9], संदेश महावीरनो,
विसामो[10] भवक्लांतनां[11] हृदयनो, तूं पंथ मुक्ती तनों ॥

वसततिलका

सूण्ये[12] तने रसनिबंध शिथिल थाय[13],
जाण्ये[14] तनें, हृदय ज्ञानि तनां जणाय[15] ।
तूं रूचतां[16] जगतनीं रुचि आलसे[17] सौ[18],
तूं रीझतां[19] सकलज्ञायकदेव[20] रीझे ॥

अनुष्टुप्

बनावूं पत्र कुन्दननां[21], रत्नोंनां अक्षरो लखी[22],
तथापि कुन्दसूत्रोनां अंकाये[23] मूल्य ना[24] कदी[25] ॥

---

१ है, २. समस्त, ३ छेदन भेदन करनेके लिये, ४. प्रज्ञारूपी छैनी, ५ को, ६ सर्व, ७ छेदनेके लिये, ८. साधकका; ९ जगतका, १० विश्राम लेनेका स्थान, ११ भवसे त्रसितके, १२ सुननेसे, १३ हो जाता है, १४ जाननेसे, १५ जाननेमे आता है, १६ अच्छा लगनेसे, १७ मंद हो जाती है, १८. सब, १९ प्रसन्न होने से, २०. सबको जाननेवाला निज आत्मा; २१. चांदीके; २२ लिखकर; २३. आंका जा सकता; २४ नही; २५. कभी भी;

❀ ॐ ❀

-: समयसार :-

(पद्यानुवाद)

जीवाजीव अधिकार

❀ छन्द—हरिगीतिका ❀

ध्रुव अचल अरु अनुपमगति, पाये हुये सब सिद्धको,
मैं वंद श्रुतकेवलिकथित, कहूँ समयप्राभृतको अहो ॥१॥

जीव चरितदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना,
स्थित कर्मपुद्गलके प्रदेशों, परसमय जीव जानना ॥२॥

एकत्वनिश्चयगत समय, सर्वत्र सुन्दर लोकमें।
उससे बने बंधनकथा, जु विरोधिनी एकत्वमें ॥३॥

है सर्व श्रुत-परिचीत-अनुभुत, भोगबंधनकी कथा।
परसे जुदा एकत्वकी, उपलब्धि केवल सुलभ ना ॥४॥

दर्शाउं एकविभक्तको, आत्मातने निज विभवसे।
दर्शाउं तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने ॥५॥

नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो हि है ॥६॥

चारित्र दर्शन ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानिके।
चारित्र नहिं दर्शन नही, नहिं ज्ञान ज्ञायक शुद्ध है ॥७॥

भाषा अनार्य बिना न, समझाना ज्यु शक्य अनार्यको ।
व्यवहार बिन परमार्थका, उपदेश होय अशक्य यों ॥८॥

इस आत्मको श्रुतसे नियत, जो शुद्ध केवल जानते ।
ऋषिगण प्रकाशक लोकके, श्रुतकेवली उसको कहें ॥९॥

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिनश्रुतकेवली उसको कहे ।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने ॥१०॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है ।
भूतार्थ आश्रित आतमा, सुदृष्टि निश्चय होय है ॥११॥

देखें परम जो भाव उसको, शुद्धनय ज्ञातव्य है ।
ठहरा जु अपरमभावमें, व्यवहार से उपदिष्ट है ॥१२॥

भूतार्थसे जाने अजीव जीव, पुण्य पापरु निर्जरा ।
आस्रव संवर बन्ध मुक्ति, ये हि समकित जानना ॥१३॥

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्मको ।
अविशेष असंयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो ॥१४॥

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य जो, अविशेष देखे आत्मको ।
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखे अहो ॥१५॥

दर्शनसहित नित ज्ञान अरु, चारित्र साधु सेवीये ।
पर ये तीनों आत्मा ही केवल, जान निश्चयदृष्टिमें ॥१६॥

ज्यों पुरुष कोई नृपति को भी, जानकर श्रद्धा करे ।
फिर यत्नसे धन अर्थ वो, अनुचरण राजाका करे ॥१७॥

जीवराजको यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीतिसे।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्नसे ॥१८॥

नोकर्म कर्म जु "मैं" अवरु, "मैं" में कर्म नोकर्म हैं।
यह बुद्धि जबतक जीवकी, अज्ञानी तबतक वो रहे ॥१९॥

मैं ये अवरु ये मैं, मैं हूँ इसका अवरु ये हैं मेरे।
जो अन्य हैं पर द्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वे ॥२०॥

मेरा ही यह था पूर्व मैं, मैं इसीका गतकाल में।
ये होयगा मेरा अवरु, मैं इसका हूँगा भावि में ॥२१॥

अयथार्थ आत्म विकल्प ऐसा, मूढ़जीव हि आचरे।
भूतार्थ जाननहार ज्ञानी, ए विकल्प नहीं करे ॥२२॥

अज्ञान मोहित बुद्धि जो, बहुभाव संयुत जीव है।
ये बद्ध और अबद्ध, पुद्गलद्रव्य मेरा वो कहै ॥२३॥

सर्वज्ञ ज्ञानविषै सदा, उपयोग लक्षण जीव है।
वो कैसे पुद्गल हो सके जो, तू कहे मेरा अरे ॥२४॥

जो जीव पुद्गल होय, पुद्गल प्राप्त हो जीवत्वको।
तू तब हि ऐसा कह सके, "है मेरा" पुद्गल द्रव्यको ॥२५॥

जो जीव होय न देह तो, आचार्य वा तीर्थेशकी।
मिथ्या बने स्तवना सभी, सो एकता जीव देहकी ॥२६॥

जीव देह दोनों एक हैं, यह वचन है व्यवहारका।
निश्चयविषैं तो जीव देह, कदापि एक पदार्थ ना ॥२७॥

जीवसे जुदा पुद्गलमयी, इस देहकी स्तवना करी ।
माने मुनी जो केवली, वन्दन हुआ स्तवना हुई ॥२८॥

निश्चयविषैं नहिं योग्य ये, नहिं देह गुण केवलि हि के ।
जो केवली गुणको स्तवे, परमार्थ केवलि वो स्तवे ॥२९॥

रे ग्राम वर्णन करनसे, भूपाल वर्णन हो न ज्यों ।
त्यों देह गुणके स्तवनसे, नहिं केवली गुण स्तवन हो ॥३०॥

कर इन्द्रिजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्मको ।
निश्चयविषें स्थित साधुजन, भाषें जितेन्द्रिय उन्हींको ॥३१॥

कर मोहजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आतमा ।
परमार्थ विज्ञायक पुरुष ने, उनहि जितमोही कहा ॥३२॥

जित मोह साधु पुरुषका जब, मोह क्षय हो जाय है ।
परमार्थ विज्ञायक पुरुष, क्षीणमोह तब उनको कहे ॥३३॥

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावोंका करे ।
इससे नियमसे जानना की, ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३४॥

ये और का है जानकर, परद्रव्यको को नर तजे ।
त्यों और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥

कुछ मोह वो मेरा नहीं, उपयोग केवल एक मैं ।
इस ज्ञानको ज्ञायक समयके, मोह निर्ममता कहे ॥३६॥

धर्मादि वे मेरे नहीं, उपयोग केवल एक हूँ ।
इस ज्ञानको ज्ञायक समयके, धर्म निर्ममता कहे ॥३७॥

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से ।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे ॥३८॥

(जीवाजीव अधिकारमे पूर्वरंग समाप्त)

को मूढ़ आत्म अज्ञान जो, पर आत्मवादी जीव है ।
है कर्म अध्यवसान ही जीव, यों हि वो कथनी करे ।३९।

अरु कोई अध्यवसानमें, अनुभाग तीक्षण मंद जो ।
उसको ही माने आत्मा, अरु अन्य को नोकर्मको ॥४०॥

को अन्य माने आत्मा बस, कर्म के ही उदय को ।
को तीव्र मंद गुणों सहित, कर्मोंहिके अनुभागको ॥४१॥

को कर्म आत्मा, उभय मिलकर जीवकी आशा धरें ।
को कर्मके संयोगसे, अभिलाष आत्माकी करें ॥४२॥

दुर्बुद्धि यों ही और बहुविध, आतमा परको, कहै ।
वे सर्व नहिं परमार्थवादी, येहि निश्चयविद कहे ॥४३॥

पुद्गलदरव परिणामसे, उपजे हुए सब भाव ये ।
सब केवली जिन भाषिया, किस रीत जीव कहो उन्हें ॥४४॥

रे कर्म अष्ट प्रकारका, जिन सर्व पुद्गलमय कहे ।
परिपाकमें जिस कर्मका फल, दुःख नाम प्रसिद्ध है ॥४५॥

व्यवहार ये दिखला दिया, जिनदेवके उपदेशमें ।
ये सर्व अध्यवसान आदिक, भावको जँह जीव कहे ॥४६॥

निर्गमन इस नृपका हुवा, निर्देश सैन्य समूह में ।
व्यवहारसे कहलाय यह, पर भूप इसमें एक है ॥४७॥

त्यों सर्व अध्यवसान आदिक, अन्य भाव जु जीव है ।
शास्त्रन किया व्यवहार, पर वहाँ जीव निश्चय एक है ॥४८॥

जीव चेतना गुण, शब्द रस रूप गध व्यक्ति विहीन है ।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान उसका, ग्रहण नहिं है लिंगसे ॥४९॥

नहिं वर्ण जीवके गंध नहिं, नहिं स्पर्श रस जीवके नहीं ।
नहिं रूप अर संहनन नहिं, संस्थान नहिं तन भी नहीं ॥५०॥

नहिं राग जीवके, द्वेष नहिं, अरु मोह जीवके है नहीं ।
प्रत्यय नहीं नहिं कर्म, अरु नोकर्म भी जीवके नहीं ॥५१॥

नहीं वर्ग जीवके, वर्गणा नहीं, कर्मस्पर्द्धक है नहीं ।
अध्यात्मस्थान न जीवके, अनुभाग स्थान भी हैं नहीं ॥५२॥

जीवके नहीं कुछ योगस्थान रु, बंधस्थान भी है नहीं ।
नहिं उदयस्थान ही जीवके, अरु स्थान मार्गणाके नहीं ॥५३॥

स्थितिबंध स्थान न जीवके संक्लेश स्थान भी हैं नहीं ।
जीवके विशुद्धि स्थान, संयमलब्धि स्थान भी हैं नहीं ॥५४॥

नहीं जीवस्थान भी जीवके, गुणस्थान भी जीवके नहीं ।
ये सब ही पुद्गल द्रव्यके, परिणाम हैं जानो यही ॥५५॥

वर्णादि गुणस्थानांत भाव जु, जीवके व्यवहारसे ।
पर कोई भी ये भाव नहीं हैं, जीवके निश्चयविषैं ॥५६॥

इन भावसे संबंध जीवका, क्षीर जलवत् जानना ।
उपयोग गुणसे अधिक, तिससे भाव कोई न जीवका ॥५७॥

देखा लुटाते पथमें को, पन्थ ये लुटात है ।
जनगण कहे व्यवहारसे, नहिं पथ को लुटात है ॥५८॥

त्यों वर्ण देखा जीवमें, इन कर्म अरु नोकर्मका ।
जिनवर कहे व्यवहारसे, यह वर्ण है इस जीवका ॥५९॥

त्यों गंध रस रूप स्पर्श तन, संस्थान इत्यादिक सबैं ।
भूतार्थदृष्टा पुरुषने, व्यवहारनयसे वर्णये ॥६०॥

संसारी जीवके वर्ण आदिक, भाव हैं संसार में ।
संसारसे परिमुक्तके नहिं, भाव को वर्णादिके ॥६१॥

यह भाव सब हैं जीव जो, ऐसा हि तू माने कभी ।
तो जीव और अजीवमें कुछ, भेद तुझ रहता नहीं ॥६२॥

वर्णादि हैं संसारी जीवके, योंहि मत तुझ होय जो ।
संसारस्थित सब जीवगण, पाये तदा रूपित्व को ॥६३॥

इस रीत पुद्गल वो हि जीव, हे मूढ़मति सम चिह्नसे ।
अरु मोक्ष प्राप्त हुआ भि पुद्गल, द्रव्य जीव बने अरे ॥६४॥

जीव एक दो त्रय चार पंचेन्द्रिय बादर सूक्ष्म हैं ।
पर्याप्त अनपर्याप्त जीव जु नामकर्म की प्रकृति है ॥६५॥

जो प्रकृति यह पुद्गलमयी, वह करणरूप बने अरे ।
उससे रचित जीवथान जो हैं, जीव क्यों हि कहाय वे ॥६६॥

पर्याप्त अनपर्याप्त जो, हैं सूक्ष्म अरु बादर सभी ।
व्यवहारसे कही जीवसंज्ञा, देहको शास्त्रन महीं ॥६७॥

मोहन करमके उदयसे, गुणस्थान जो ये वर्णये ।
वे क्यों बने आत्मा, निरंतर जो अचेतन जिन कहे ॥६८॥

पहला जीवाजीवाधिकार पूर्ण हुआ ।

२ अथ कर्तृकर्माधिकारः

रे आत्म आश्रवका जहाँ तक, भेद जीव जाने नहीं ।
क्रोधादिमें स्थिति होय है, अज्ञानि ऐसे जीवकी ॥६९॥

जीव वर्तता क्रोधादिमें, तब करम संचय होय है ।
सर्वज्ञने निश्चय कहा, यों बन्ध होता जीवके ॥७०॥

ये जीव ज्यों ही आश्रवोंका, त्यों ही अपनी आत्मका ।
जाने विशेषांतर तब ही, बन्धन नहीं उसको कहा ॥७१॥

अशुचिपना विपरीतता, ये आश्रवोंका जानके ।
अरु दुःखकारण जानके, इनसे निवर्तन जीव करे ॥७२॥

मैं एक शुद्ध ममत्व हीन रु, ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ ।
इसमें रहूँ स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥७३॥

ये सर्व जीव निबद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य हैं ।
ये दुःख दुखफल जानके, इनसे निवर्तन जीव करे ॥७४॥

जो कर्मका परिणाम, अरु नोकर्मका परिणाम है ।
सो नहीं करे जो मात्र जाने, वो हि आत्मा ज्ञानी है ॥७५॥

वहुभाँति पुद्गल कर्म सब, ज्ञानी पुरुष जाना करे ।
परद्रव्य पर्यायों न प्रणमे, नहिं ग्रहे नहिं ऊपजे ॥७६॥

वहुभाँति निजपरिणाम सब, ज्ञानी पुरुष जाना करे ।
पर द्रव्य पर्यायों न प्रणमें, नहिं ग्रहे नहिं ऊपजे ॥७७॥

पुद्गल करमका फल अनन्ता, ज्ञानि जन जाना करे ।
परद्रव्य पर्यायों न प्रणमें, नहिं ग्रहे नहिं ऊपजे ॥७८॥

इम भाँति पुद्गल द्रव्य भी, निज भावसे ही परिणमे ।
परद्रव्य पर्यायों न प्रणमें, नहिं ग्रहे नहि ऊपजे ॥७९॥

जिव भाव हेतू पाय पुद्गल, कर्मरूप जु परिणमे ।
पुद्गल करमके निमितसे, यह जीव भी त्यों परिणमे ॥८०॥

जिव कर्मगुण कर्त्ता नहीं, नहिं जीवगुण कर्म हि करे ।
अन्योन्यके हि निमित्तसे, परिणाम दोनोंके वने ॥८१॥

इस हेतुसे आत्मा हुआ, कर्ता स्वयं निज भाव ही ।
पुद्गल करमकृत सर्व भावोंका, कभी कर्ता नहीं ॥८२॥

आत्मा करे निजको हि ये, मंतव्य निश्चय नय हि का ।
अरु भोगता निजको हि आत्मा, शिष्य यों तू जानना ॥८३॥

आत्मा करे बहुभांति पुद्गल-कर्म मत व्यवहारका ।
अरु वो हि पुद्गलकर्म, आत्मा नेकविधमय भोगता ॥८४॥

पुद्गलकरम जिव जो करे, उनको हि जो जिव भोगवे ।
जिन को असंमत द्वि क्रिया, से एकरूप आत्मा हुवे ॥८५॥

जिवभाव पुद्गल भाव दोनों भावको आत्मा करे ।
इससे हि मिथ्यादृष्टि, ऐसे द्विक्रियावादी हुवे ॥८६॥

मिथ्यात्व जीव अजीव दोविध, उभयविध अज्ञान है ।
अविरमण योग रु मोह अरु क्रोधादि उभय प्रकार है ॥८७॥

मिथ्यात्व अरु अज्ञान आदि अजीव, पुद्गल कर्म हैं ।
अज्ञान अरु अविरमण अरु मिथ्यात्व जिव, उपयोग हैं ॥८८॥

है मोहयुत उपयोगका परिणाम तीन अनादिका ।
मिथ्यात्व अरु अज्ञान अविरतभाव ये तीन जानना ॥८९॥

इससे हि है उपयोग त्रयविध, शुद्ध निर्मल भाव जो ।
जो भाव कुछ भी वह करे, उस भावका कर्ता बने ॥९०॥

जो भाव जीव करे स्वयं, उस भावका कर्ता बने ।
उस ही समय पुद्गल स्वयं, कर्मत्व रूपहि परिणमे ॥९१॥

परको करे निजरूप अरु, निज आत्म को भी पर करे ।
अज्ञानमय ये जीव ऐसा, कर्मका कारक बने ॥९२॥

परको नहीं निजरूप अरु, निज आत्मको नहि पर करे ।
यह ज्ञानमय आत्मा, अकारक कर्मका ऐसे बने ॥९३॥

"मैं क्रोध" आत्मविकल्प यह, उपयोग त्रयविध आचरे ।
तब जीव उस उपयोगरूप, जिवभावका कर्ता बने ॥९४॥

"मैं धर्म" आदि विकल्प यह, उपयोग त्रयविध आचरे ।
तब जीव उस उपयोगरूप, जिवभावका कर्ता बने ॥९५॥

यह मंदबुद्धि जीव यों, परद्रव्यको निजरूप करे ।
इस भाँतिसे निज आत्मको, अज्ञानसे पररूप करे ॥९६॥

इस हेतुसे परमार्थविद्, कर्त्ता कहें इस आत्मको ।
यह ज्ञान जिसको होय, वो छोड़े सकल कर्तृत्वको ॥९७॥

घटपटरथादिक वस्तुएँ, कर्मादि अरु अब इन्द्रियें ।
नोकर्म विधविध जगतमें, आत्मा करे व्यवहारसे ॥९८॥

परद्रव्यको जिव जो करे, तो जरूर वो तन्मय बने ।
पर वो नहीं तन्मय हुआ, इससे न कर्त्ता जीव है ॥९९॥

जिव नहिं करे घट पट नहीं, नहिं शेष द्रव्यों जिव करे ।
उपयोगयोग निमित्तकर्त्ता, जीव तत्कर्ता बने ॥१००॥

ज्ञानावरण आदिक सभी, पुद्गल दरव परिणाम हैं ।
करता नहीं आत्मा उन्हें, जो जानता वो ज्ञानि है ॥१०१॥

जो भाव जीव करे शुभाशुभ, उस हि का कर्ता बने ।
उसका बने वो कर्म, आत्मा उस हि का वेदक बनें ॥१०२॥

जो द्रव्य जो गुण द्रव्यमें, परद्रव्यरूप न संक्रमे ।
अनसंक्रमा किसभाँति वह परद्रव्य प्रणमावे अरे ॥१०३॥

आत्मा करे नहिं द्रव्य गुण, पुद्गलमयी कर्मोंविषै ।
इन उभयको उनमें न कर्त्ता, क्यों हि तत्कर्त्ता बने ॥१०४॥

जिव हेतुभूत हुआ अरे, परिणाम देख जु बंधका ।
उपचारमात्र कहाय यों, यह कर्म आत्माने किया ॥१०५॥

योद्धा करें जहँ युद्ध, वहाँ वह भूपकृत जनगण कहैं।
त्यों जीवने ज्ञानावरण आदिक किये व्यवहार से ॥१०६॥

उपजावता प्रणमावता ग्रहता अवरु बांधे करे।
पुद्गलदरबको आतमा, व्यवहारनय वक्तव्य है ॥१०७॥

गुणदोष उत्पादक कहा, ज्यों भूपको व्यवहार से।
त्यों द्रव्यगुण उत्पन्न कर्त्ता, जिव कहा व्यवहारसे ॥१०८॥

सामान्य प्रत्यय चार, निश्चय बंधके कर्ता कहे।
मिथ्यात्व अरु अविरमण, योग कषाय येही जानने ॥१०९॥

फिर उनहिंका दर्शा दिया, यह भेद तेर प्रकारका।
मिथ्यात्वगुणस्थानादि ले, जो चरमभेद सयोगिका ॥११०॥

पुद्गल करमके उदयसे, उत्पन्न इससे अजीव वे।
वे जो करें कर्मों भले, भोक्ता भि नहिं जिवद्रव्य है ॥१११॥

परमार्थसे 'गुण' नामके, प्रत्यय करें इन कर्मको।
तिससे अकर्त्ता जीव है, गुणथान करते कर्मको ॥११२॥

उपयोग ज्योंहि अनन्य जिवका, क्रोध त्योंही जीवका।
तो दोष आवे जीव त्योंहि अजीवके एकत्वका ॥११३॥

यों जगत में जो जीव वेहि अजीव भी निश्चय हुवे।
नोकर्म, प्रत्यय, कर्म के एकत्वमें भी दोष ये ॥११४॥

जो क्रोध यों है अन्य, जिव उपयोग आत्मक अन्य है।
तो क्रोधवत् नोकर्म प्रत्यय कर्म भी सब अन्य हैं ॥११५॥

जिवमें स्वयं नहिं बद्ध, अरु नहिं कर्मभावों परिणमे ।
तो वोहि पुद्गल द्रव्य भी, परिणमनहीन बने अरे ॥११६॥

जो वर्गणा कार्माणकी, नहिं कर्मभावों परिणमे ।
संसार का हि अभाव अथवा सांख्यमत निश्चित हुवे ॥११७॥

जो कर्म भावों परिणमावे जीव पुद्गल द्रव्यको ।
क्यों जीव उसको परिणमावे, स्वयं नहिं परिणमत जो ॥११८॥

स्वयमेव पुद्गलद्रव्य अरु, जो कर्म भावों परिणमे ।
जिव परिणमावे कर्मको, कर्मत्वमें मिथ्या बने ॥११९॥

पुद्गल द्रव्य जो कर्म परिणत, नियमसे कर्महि बने ।
ज्ञानावरण इत्यादि परिणत वोहि तुम जानो उसे ॥१२०॥

नहिं बद्धकर्म, स्वयं नहीं जो क्रोधभावों परिणमे ।
तो जीव यह तुझ मतविषैं, परिणमनहीन बने अरे ॥१२१॥

क्रोधादि भावों जो स्वय नहिं जीव आप हि परिणमे ।
संसारका हि अभाव अथवा सांख्यमत निश्चित हुवे ॥१२२॥

जो क्रोध पुद्गलकर्म जिवको, परिणमावे क्रोधमें ।
क्यों क्रोध उसको परिणमावे जो स्वयं नहिं परिणमे ॥१२३॥

अथवा स्वयं जिव क्रोधभावों परिणमे तुझ बुद्धिसे ।
तो क्रोध जिवको परिणमावे क्रोधमें मिथ्या बने ॥१२४॥

क्रोधोपयोगी क्रोध जिव, मानोपयोगी मान है ।
मायोपयुत माया अवरु लोभोपयुत लोभहि बने ॥१२५॥

जिस भावको आत्मा करे, कर्त्ता बने उस कर्मका।
वो ज्ञानमय है ज्ञानिका, अज्ञानमय अज्ञानिका ॥१२६॥

अज्ञानमय अज्ञानिका, जिमसे करे वो कर्म को।
पर ज्ञानमय है ज्ञानिका, जिससे करे नहिं कर्म वो ॥१२७॥

ज्यों ज्ञानमय को भावमेंसे ज्ञान भावहि उपजते।
यों नियत ज्ञानी जीवके सब भाव ज्ञानमयी बनें ॥१२८॥

अज्ञानमय को भावसे, अज्ञान भावहि ऊपजे।
इस हेतुसे अज्ञानिके, अज्ञानमय भावहि बने ॥१२९॥

ज्यों कनकमय को भावमेंसे, कुण्डलादिक ऊपजे।
पर लोहमय को भावसे, कटकादि भावो नीपजे ॥१३०॥

त्यों भाव बहुविध ऊपजे, अज्ञानमय अज्ञानिके।
पर ज्ञानिके तो सर्व भावहि, ज्ञानमय निश्चय बने ॥१३१॥

जो तत्त्वका अज्ञान जिवके, उदय वो अज्ञानका।
अप्रतीत तत्त्वकी जीवके जो, उदय वो मिथ्यात्वका ॥१३२॥

जिवका जु अविरत भाव है, वो उदय अनसंयम हि का।
जिवका कलुष उपयोग जो, वो उदय जान कषायका ॥१३३॥

शुभ अशुभ वर्तन या निवर्तन रूप जो चेष्टा हि का।
उत्साह करते जीवके वो उदय जानो योगका ॥१३४॥

जब होय हेतूभूत ये तब स्कन्ध जो कार्माणके।
वे अष्टविध ज्ञानावरण इत्यादि भावों परिणमें ॥१३५॥

कार्मणवरगणारूप वे जब, बन्ध पावें जीवमें ।
आत्मा हि जिव परिणाम भावोंका तभी हेतू बने ॥१३६॥
जो कर्मरूप परिणाम, जिवके साथ पुद्गलका बने ।
तो जीव अरु पुद्गल उभय ही, कर्मपन पावें अरे ॥१३७॥
पर कर्मभावों परिणमन है, एक पुद्गलद्रव्यके ।
जिव भाव हेतूसे अलग, तब कर्मके परिणाम हैं ॥१३८॥
जिवके करमके साथ ही, जो भाव रागादिक बने ।
तो कर्म अरु जिव उभय ही, रागादिपन पावें अरे ॥१३९॥
पर परिणमन रागादिरूप तो, होत है जिव एकके ।
इससे हि कर्मोदय निमितसे, अलग जिव परिणाम है॥१४०॥
हैं कर्म जिवमें बद्धस्पृष्ट, जु कथन यह व्यवहारका ।
पर बद्धस्पृष्ट न कर्म जिवमें, कथन है नय शुद्धका ॥१४१॥
हैं कर्म जिवमें बद्ध वा अनबद्ध ये नयपक्ष है ।
परपक्षसे अतिक्रान्त भाषित, वो समयका सार है ॥१४२॥
नयद्वय कथन जाने हि, केवल समयमें प्रतिबद्ध जो ।
नयपक्ष कुछ भी नहिं ग्रहे, नयपक्षसे परिहीन वो ॥१४३॥
सम्यक्त्व और सुज्ञानकी, जिस एकको संज्ञा मिले ।
नयपक्ष सकल विहीन भाषित, वो समयका सार है ॥१४४॥

कर्ता कर्म अधिकार पूर्ण हुआ ।

३ अथ पुण्यपापाधिकारः

है कर्म अशुभ कुशील अरु जानो सुशील शुभकर्मको ।
किम रीत होय सुशील, जो संसारमें दाखिल करे ॥१४५॥

ज्यों लोहकी त्यों कनककी, जंजीर जकड़े पुरुषको ।
इस रीतसे शुभ या अशुभकृत, कर्म बांधे जीवको ॥१४६॥

इससे करो नहिं राग वा संसर्ग उभय कुशीलका ।
इस कुशीलके संसर्ग से है, नाश तुझ स्वातंत्र्यका ॥१४७॥

जिस भाँति कोई पुरुष, कुत्सितशील जनको जानके ।
संसर्ग उसके साथ त्यों ही, राग करना परितजे ॥१४८॥

यों कर्मप्रकृती शील और स्वभाव कुत्सित जानके ।
निजभावमें रत राग, अरु संसर्ग उसका परिहरे ॥१४९॥

जिव रागी बांधे कर्मको, वैराग्यगत मुक्ती लहे ।
ये जिन प्रभू उपदेश है नहिं रक्त हो तू कर्मसे ॥१५०॥

परमार्थ है निश्चय, समय, शुध, केवली, मुनि, ज्ञानि है ।
तिष्ठे जु उसहि स्वभाव मुनिवर, मोक्षकी प्राप्ती करै ॥१५१॥

परमार्थमें नहिं तिष्ठकर, जो तप करें व्रतको धरें ।
तप सर्व उसका बाल अरु, व्रत बाल जिनवरने कहे ॥१५२॥

व्रतनियमको धारें भले, तपशीलको भी आचरें ।
परमार्थसे जो बाह्य वो, निर्वाणप्राप्ती नहिं करें ॥१५३॥

परमार्थबाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका ।
अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो ससारका ॥१५४॥

जीवादिका श्रद्धान समकित, ज्ञान उसका ज्ञान है ।
रागादिवर्जन चरित है, अरु ये हि मुक्ती पथ है ॥१५५॥

विद्वान् जन भूतार्थ तज, व्यवहारमें वर्तन करे ।
पर कर्म नाश विधान तो, परमार्थ आश्रित संतके ॥१५६॥

मल मिलन लिप्त जु नाश पावे श्वेतपन ज्यों वस्त्रका ।
मिथ्यात्वमलके लेपसे, सम्यक्त त्यों ही जानना ॥१५७॥

मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका ।
अज्ञानमलके लेपसे, सद्ज्ञान त्यों ही जानना ॥१५८॥

मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका ।
चारित्र पावे नाश, लिप्त कषायमलसे जानना ॥१५९॥

यह सर्वज्ञानी-दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छादसे ।
संसारप्राप्त, न जानता वो सर्वको सब रीतसे ॥१६०॥

सम्यक्त्वप्रतिबंधक करम, मिथ्यात्व जिनवरने कहा ।
उसके उदयसे जीव मिथ्यात्वी बने यह जानना ॥१६१॥

त्यों ज्ञानप्रतिबंधक करम, अज्ञान जिनवरने कहा ।
उसके उदयसे जीव अज्ञानी बने यह जानना ॥१६२॥

चारित्रप्रतिबंधक करम, जिन ने कषायोंको कहा।
उसके उदयसे जीव चारितहीन हो यह जानना ॥१६३॥

* पुण्य पाप अधिकार पूण हुआ *

४. अथ आस्रवाधिकारः

मिथ्यात्व अविरत अरु कषायें, योग संज्ञ असज्ञ हैं।
ये विविध भेद जु जीवमें, जिवके अनन्य हि भाव हैं ॥१६४॥

अरु वे हि ज्ञानावरन आदिक, कर्मके कारण बनें।
उनका भि कारण जिव बने, जो रागद्वेषादिक करे ।१६५॥

सद्दृष्टिको आश्रव नहीं, नहिं बंध आश्रवरोध है।
नहिं बांधता जाने हि पूर्वनिबद्ध जो सत्ताविषैं ॥१६६॥

रागादियुत जो भाव जिवकृत उसहि को बधक कहा।
रागादिसे प्रविमुक्त ज्ञायक मात्र, बधक नहिं रहा ॥१६७॥

फल पक्व खिरता, वृन्तसह संबंध फिर पाता नहीं।
त्यों कर्मभाव खिरा, पुनः जिवमें उदय पाता नहीं ॥१६८॥

जो सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते हैं ज्ञानिके।
वे पृथ्विपिंड समान हैं, कार्मणशरीर निबद्ध हैं ॥१६९॥

चउविधाश्रव समय समय जु, ज्ञानदर्शन गुणहिसे।
बहु भेद बांधे कर्म, इससे ज्ञानि बंधक नाहि है ॥१७०॥

जो ज्ञानगुणकी जघनतामें, वर्तता गुण ज्ञानका ।
फिर २ प्रणमता अन्यरूप जु, उसहिसे बंधक कहा ॥१७१॥

चारित्र दर्शन ज्ञान तीन, जघन्य भाव जु परिणमे ।
उससे हि ज्ञानी विविध पुद्गलकर्मसे बंधात है ॥१७२॥

जो सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते सद्दृष्टिके ।
उपयोग के प्रायोग्य बंधन, कर्म भावोंसे करे ॥१७३॥

सत्ताविषैं वे निरुपभोग्य हि, बालिका ज्यों पुरुषको ।
उपभोग्य बनते वे हि बांधें, यौवनां ज्यों पुरुषको ॥१७४॥

अनभोग्य रह उपभोग्य जिस विध होय उस विध बांधते ।
ज्ञानावरण इत्यादि कर्म जु सप्त अष्ट प्रकार के ॥१७५॥

इस हेतुसे सम्यक्त्वसंयुत, जीव अनबधक कहे ।
आसरव भाव अभावमें, प्रत्यय नहीं बधक कहे ॥१७६॥

नहिं रागद्वेष न मोह ये, आश्रव नहीं सद्दृष्टि के ।
इससे हि आश्रवभाव बिन, प्रत्यय नहीं हेतू बनें ॥१७७॥

हेतू चतुर्विध कर्म अष्ट प्रकारका कारण कहा ।
उनका हि रागादिक कहा, रागादि नहिं वहां बध ना ।१७८।

जनसे ग्रहित आहार ज्यों, उदराग्निके सयोगसे ।
बहुभेद मांस, वसा अरू, रुधिरादि भावों परिणमे ॥१७९।

त्यों ज्ञानिके भी पूर्वकालनिबद्ध जो प्रत्यय रहे ।
बहुभेद बांधे कर्म, जो जिव शुद्धनयपरिच्युत बने ॥१८०॥

❀ आस्रव अधिकार पूर्ण हुआ ❀

५. अथ संवराधिकारः

उपयोगमें उपयोग, को उपयोग नहिं क्रोधादि में ।
है क्रोध क्रोधविषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोगमें ।१८१।
उपयोग है नहिं अष्टविध, कर्मों अवरु नोकर्ममें ।
ये कर्म अरु नोकर्म भी कुछ हैं नहीं उपयोगमें ॥१८२॥
ऐसा अविपरित ज्ञान जब ही प्रगटता है जीव के ।
तब अन्य नहिं कुछ भाव वह उपयोग शुद्धात्मा करे ।१८३।
ज्यों अग्नितप्त सुवर्ण भी, निज स्वर्णभाव नहीं तजे ।
त्यों कर्म उदय प्रतप्त भी, ज्ञानी न ज्ञानिपना तजे ।१८४।
जिव ज्ञानि जाने येहि, अरु अज्ञानि रागहि जिव गिनें ।
आत्मस्वभाव अजान जो, अज्ञानतमआच्छादसे ॥१८५॥
जो शुद्ध जाने आतमको, वो शुद्ध आतम हि प्राप्त हो ।
अनशुद्ध जाने आतमको, अनशुद्ध आतम हि प्राप्त हो ॥१८६॥
शुभ अशुभसे जो रोककर निज आतमको आतमा हि से ।
दर्शन अवरु ज्ञान हि ठहर, परद्रव्यइच्छा परिहरे ॥१८७॥

जो सर्वसंगविमुक्त ध्यावे, आत्मसे आत्मा हि को ।
नहिं कर्म अरु नोकर्म, चेतक चेतता एकत्व को ॥१८८॥

वह आत्मध्याता, ज्ञानदर्शनमय अनन्यमयी हुआ ।
बस अल्पकाल जु कर्मसे परिमोक्ष पावे आत्म का ॥१८९॥

रागादिके हेतू कहे, सर्वज्ञ अध्यवसानको ।
मिथ्यात्व अरु अज्ञान, अविरतभाव त्यों ही योगको।१९०।

कारण अभाव जरूर आश्रवरोध ज्ञानीको बने ।
आसरवभाव अभावमें, नहिं कर्मका आना बने ॥१९१॥

है कर्मके जु अभावसे, नोकर्मका रोधन बने ।
नोकर्मका रोधन हुवे, संसार सरोधन बने ॥१९२॥

❀ संवर अधिकार पूर्ण हुआ ❀

६. अथ निर्जराधिकारः

चेतन अचेतन द्रव्यका, उपभोग इन्द्रिसमूहसे ।
जो जो करे सद्दृष्टि वह सब, निर्जरा कारण बनें ॥१९३।

परद्रव्यके उपभोग निश्चय, दुःख वा सुख होय है ।
इन उदित सुख दुख भोगता, फिर निर्जरा हो जाय है ।१९४।

ज्यों जहरके उपभोगसे भी, वैद्यजन मरता नहीं ।
त्यों उदयकर्म जु भोगता भी, ज्ञानिजन बँधता नहीं ॥१९५॥

ज्यों अरतिभाव जु मद्य पीकर, मत्तजन बनता नहीं।
द्रव्योपभोगविषैं अरत, ज्ञानी पुरुष बँधता नहीं ॥१९६॥

सेता हुआ नहिं सेवता, नहिं सेवता सेवक बने।
प्रकरणतनी चेष्टा करे, अरु प्राकरण ज्यों नहिं हुवे ।१९७।

कर्मों हि के जु अनेक, उदय विपाक जिनवरने कहे।
वे मुझ स्वभाव जु हैं नहीं, मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९८।

पुद्गलकरमरूप रागका हि, विपाकरूप है उदय ये।
ये है नहीं मुझभाव, निश्चय एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९९॥

सद्दृष्टि इसरित आत्मको, ज्ञायकस्वभाव हि जानता।
अरु उदय कर्मविपाकको वह, तत्त्वज्ञायक छोड़ता ॥२००॥

अणुमात्र भी रागादिका सद्भाव है जिस जीवको।
वो सर्व आगमधर भले ही, जानता नहिं आत्मको ।२०१।

नहिं जानता जहँ आत्मको, अनआत्म भी नहिं जानता।
वो क्योंहि होय सुदृष्टि जो, जिव अजिवको नहिं जानता।।२०२।

जिवमें अपद्भूत द्रव्यभावकु, छोड़ ग्रह तु यथार्थ से।
थिर, नियत एकहि भाव यह, उपलभ्य जो हि स्वभावसे ।२०३

मति, श्रुती, अवधी, मनः, केवल सबहि एकहि पद जु है।
वो ज्ञानपद परमार्थ है, जो पाय जिव मुक्ती लहे ॥२०४॥

रे ज्ञानगुणसे रहित बहुजन, पद नहीं यह पा सके ।
तू कर ग्रहण पद नियत ये, जो कर्ममोक्षेच्छा तुझे ।२०५।

इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे ।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ।२०६।

परद्रव्य यह मुझ द्रव्य, यों तो कौन ज्ञानीजन कहे ।
निज आत्मको निजका परिग्रह जानता जो नियमसे ।२०७।

परिग्रह कभी मेरा बने, तो मैं अजीव बनूं अरे ।
मैं नियमसे ज्ञाता हि, इससे नहिं परिग्रह मुझ बने ।२०८।

छेदाय या भेदाय, को ले जाय, नष्ट, बनो भले ।
या अन्यको रित जाय, पर परिग्रह न मेरा है अरे ।२०९।

अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं पुण्य इच्छा ज्ञानिके ।
इससे न परिग्रहि पुण्यका, वो पुण्यका ज्ञायक रहे ।२१०।

अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं पाप इच्छा ज्ञानिके ।
इससे न परिग्रहि पापका, वो पापका ज्ञायक रहे ।।२११।।

अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं अशन इच्छा ज्ञानिके ।
इससे न परिग्रहि अशनका, वो अशनका ज्ञायक रहे ।२१२।

अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं पान इच्छा ज्ञानिके ।
इससे न परिग्रहि पानका, वो पानका ज्ञायक रहे ।।२१३।।

ये आदि विध विध भाव बहु, ज्ञानी न इच्छे सर्वको ।
सर्वत्र आलम्बनरहित बस, नियत ज्ञायकभाव वो ॥२१४॥

सांप्रत उदयके भोगमें जु वियोगबुद्धी ज्ञानिके ।
अरु भावि कर्म विपाककी, कांक्षा नहीं ज्ञानी करे ॥२१५॥

रे वेद्यवेदक भाव दोनों, समय समय विनष्ट है ।
ज्ञानी रहे ज्ञायक, कदापि न उभयकी कांक्षा करे ॥२१६॥

संसार देह सबंधि अरु बन्धोपभोग निमित्त जो ।
उन सर्व अध्यवसान उदय जु राग होय न ज्ञानिको ।२१७।

हो द्रव्य सबमें रागवर्जक, ज्ञानि कर्मों मध्यमें ।
पर कर्मरजसे लिप्त नहिं, ज्यों कनक कर्दम मध्यमें ॥२१८॥

पर द्रव्य सबमें रागशील, अज्ञानि कर्मों मध्यमें ।
वह कर्म रजसे लिप्त हो, ज्यों लोह कर्दम मध्यमें ।२१९।

ज्यों शंखविविध सचित्त, मिश्र, अचित्त वस्तू भोगते ।
पर शंखके शुक्लत्वको नहिं, कृष्ण कोई कर सके ॥२२०॥

त्यों ज्ञानि भी मिश्रित, सचित्त, अचित्त, वस्तू भोगते ।
पर ज्ञान ज्ञानीका नहीं, अज्ञान कोई कर सके ॥२२१॥

जबही स्वयं वो शंख, तजकर स्वीय श्वेत स्वभावको ।
पावे स्वयं कृष्णत्व तब ही, छोड़ता शुक्लत्वको ॥२२२॥

त्यों ज्ञानि भी जब ही स्वय निज, छोड ज्ञानस्वभावको ।
अज्ञानभावों परिणसे, अज्ञानताको प्राप्त हो ॥२२३॥

ज्यों जगतमें को पुरुष, वृत्तिनिमित्त सेवे भूप को ।
तो भूप भी सुखजनक विधविध भोग देवे पुरुपको ।२२४।

त्यों जिव पुरुप भी कर्मरजका सुख अरथ सेवन करे ।
तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोग देवे जीवके ॥२२५॥

अरु वो हि नर जब वृत्तिहेतू भूपको सेवे नहीं ।
तो भूप भी सुखजनक विधविध भोगको देवे नहीं ।२२६।

सद्दृष्टिको त्यों विषयहेतू कर्मरज सेवन नही ।
तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोगको देता नहीं ।२२७।

सम्यक्ति जिव होते निःशंकित इसहिसे निर्भय रहें ।
है सप्तभयप्रविमुक्त वे, इसही से वे निःशंक हैं ॥२२८॥

जो कर्मवधनमोहकर्त्ता, पाद चारों छेदता ।
चिन्मूर्ति वो शकारहित, सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२२९॥

जो कर्मफल अरु सर्व धर्मोंकी न कांक्षा धारता ।
चिन्मूर्ति वो कांक्षारहित सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२३०॥

सब वस्तुधर्मविषै जुगुप्साभाव जो नहिं धारता ।
चिन्मूर्ति निर्विचिकित्स वो, सद्दृष्टि निश्चय जानना ।२३१।

संमूढ नहिं सब भावमें जो सत्यदृष्टी धारता ।
वो मूढ़दृष्टिविहीन सम्यक्दृष्टि निश्चय जानना ।।२३२।।

जो सिद्धभक्ती सहित है, गोपनकरें सब धर्मका ।
चिन्मूर्ति वो उपगुहनकर सम्यक्तदृष्टी जानना ।।२३३।।

उन्मार्ग जाते स्वात्मको भी, मार्गमें जो स्थापता ।
चिन्मूर्ति वो थितिकरणयुत, सम्यक्तदृष्टी जानना ।२३४।

जो मोक्षपथमें साधु त्रयका वत्सलत्व करे अहा ।
चिन्मूर्ति वो वात्सल्ययुत, सम्यक्तदृष्टी जानना ।।२३५।।

चिन्मूर्ति मन-रथपंथमें, विद्यारथारूढ़ घूमता ।
जिनराज ज्ञान प्रभावकर सम्यक्तदृष्टी जानना ।।२३६।।

❀ निर्जराधिकार समाप्त हुआ ❀

७. अथ बंधाधिकारः

जिस रीत कोई पुरुष मर्दन आप करके तेलका ।
व्यायाम करता शस्त्रसे, बहु रजभरे स्थानक खड़ा ।२३७।

अरु ताड़ कदली बांस आदी छिन्नभिन्न बहू करे ।
उपघात आप सचित्त अवरु अचित्त द्रव्योंका करे ।।२३८।।

बहुभांतिके करणादिसे उपघात करते उसहि को ।
निश्चयपने चिंतन करो, रजबंध है किन कारणों ।२३९।

यों जानना निश्चयपनें, चिकनाइ जो उस नरविषें ।
रजवधकारण वो हि है, नहिं कायचेष्टा शेष है ॥२४०॥

चेष्टा विविधमें वर्तता, इसभांति मिथ्यादृष्टि जो ।
उपयोगमें रागादि करता, रजहिसे लेपाय वो ॥२४१॥

जिस रीत फिर वो ही पुरुष, उस तेल सबको दूरकर ।
व्यायाम करता शस्त्रसे, बहु रजभरे स्थानक ठहर ।२४२।

अरु ताड़, कदली, बांस आदी, छिन्न भिन्न बहू करे ।
उपघात आप सचित्त अवरु, अचित्त द्रव्योंका करे ।२४३।

बहुभांतिके करणादिसे, उपघात करते उसहि को ।
निश्चयपने चिंतनकरो, रजबंध नहिं किन कारणों ।२४४।

यों जानना निश्चयपने, चिकनाइ जो उस नरविषें ।
रजवधकारण वो हि है, नहिं कायचेष्टा शेष है ॥२४५॥

योगों विविधमें वर्तता, इसभांति सम्यक्दृष्टि जो ।
उपयोगमें रागादि न करे, रजहि नहिं लेपाय वो ।२४६।

जो मानता मैं मारुं पर अरु घात पर मेरा करे ।
वो मूढ़ है, अज्ञानि है, विपरीत इससे ज्ञानि है ॥२४७॥

है आयुक्षयसे मरण जिवका ये हि जिनवरने कहा ।
तू आयु तो हरता नहीं तैंने मरण कैसे किया ॥२४८॥

है आयुक्षयसे मरण जिवका ये हि जिनवरने कहा ।
वे आयु तुझ हरते नहीं, तो मरण तुझ कैसे किया ।२४९।

जो मानता मैं पर जिलावूं. मुझ जिवन परसे रहे ।
वो मूढ़ है, अज्ञानि है, विपरीत इससे ज्ञानि है ।।२५०।।

जीतव्य जिवका आयुदयसे, ये हि जिनवरने कहा ।
तू आयु तो देता नहीं, तैंने जिवन कैसे किया ।।२५१।।

जीतव्य जिवका आयुदयसे, ये हि जिनवरने कहा ।
वो आयु तुझ देते नहीं, तो जिवन तुझ कैसे किया ।२५२।

जो आपसे माने दुखी सुखि, मैं करूं परजीव को ।
वो मूढ है, अज्ञानि है, विपरीत इससे ज्ञानि है ।।२५३।।

जहँ उदयकर्म जु जीव सब ही, दुखित अवरु सुखी बनें ।
तू कर्म तो देता नहीं, कैसे तु दुखित सुखी करे ।।२५४।।

जहँ उदयकर्म जु जीव सब ही, दुखित अवरु सुखी बनें ।
वो कर्म तुझ देते नहीं, तो दुखित तुझ कैसे करें ।।२५५।।

जहँ उदयकर्म जु जीव सब ही, दुखित अवरु सुखी बनें ।
वो कर्म तुझ देते नहीं, तो सुखित तुझ कैसे करें ।।२५६।।

मरता दुखी होता जु जिव सब कर्म उदयोंसे बनें ।
मुझसे मरा अरु दुखि हुआ क्या मत न तुझ मिथ्या अरे ।२५७।

अरु नहिं मरे, नहिं दुखि बने, वे कर्म उदयोंसे बने ।
"मैने न मारा दुखि करा" क्या मत न तुझ मिथ्या अरे।२५८।

ये बुद्धि तेरी "दुखित अरु सुखी करूं हूँ जीवको" ।
वो मूढ़मति तेरी अरे, शुभ अशुभ बांधे कर्मको ।।२५९।।

करता तु अध्यवसान"दुखित सुखी करूं हूँ जीवको" ।
वो बांधता है पापको वा बांधता है पुण्यको ।।२६०।।

करता तु अध्यवसान "मै मारूं जिवाऊं जीवको" ।
वो बांधता है पापको वा बांधता है पुण्य को ।।२६१।।

मारो न मारो जीवको, है बध अध्यवसानसे ।
यह आतमाके बधका, संक्षेप निश्चयनय विषैं ।।२६२।।

यों झूठ मांहि, अदत्तमें, अब्रह्म अरु परिग्रहविषै ।
जो होंय अध्यवसान उससे पापबंधन होय है ।।२६३।।

इस रीत सत्य रु दत्तमें , त्यों ब्रह्म अनपरिग्रहविषे ।
जो होंय अध्यवसान उससे पुण्यबंधन होय है ।।२६४।।

जो होय अध्यवसान जिवके, वस्तुआश्रित वो बने ।
पर वस्तुसे नहिं बंध अध्यवसानसे ही बंध है ।।२६५।।

करता दुखी सुखि जीवको, अरु बद्ध मुक्त करूँ अरे ।
ये मूढ़मति तुझ है निरर्थक, इस हि से मिथ्या हि है ।२६६।

सब जीव अध्यवसान कारण, कर्मसे बँधते जहाँ ।
अरु मोक्षमग थित जीव छूटें, तू हि क्या करता भला ।२६७।

तिर्यंच, नारक, देव, मानव, पुण्यपाप अनेक जे ।
उन सर्वरूप करै जु निजको, जीव अध्यवसानसे ।।२६८।।

अरु त्योंहि धर्म अधर्म, जीव अजीव, लोक अलोक जे ।
उन सर्वरूप करै जु निजको, जीव अध्यवसानसे ।।२६९।।

इन आदि अध्यवसान विधविध वर्तते नहिं जिनहि को ।
शुभ-अशुभ कर्म अनेकसे, मुनिराज वे नहिं लिप्त हों ।२७०।

जो बुद्धि, मति, व्यवसाय, अध्यवसान अरु विज्ञान है ।
परिणाम चित्त रु भाव शब्दहि सर्व ये एकार्थ हैं ।।२७१।।

व्यवहारनय इस रीत जान, निषिद्ध निश्चयनयहिसे ।
मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ती करे ।।२७२।

जिनवरप्ररूपित व्रत, समिति, गुप्ती अवरु तप शीलको ।
करता हुआ भि अभव्य जिव, अज्ञानि मिथ्यादृष्टि है ।२७३।
मोक्षकी श्रद्धाविहीन, अभव्य जिव शास्त्रों पढ़ै ।
पर ज्ञानकी श्रद्धारहितको, पठन ये नहिं गुण करै ।।२७४।।

वो धर्मको श्रद्धे, प्रतीत, रुची अरु स्पर्शन करे ।
वो भोगहेतू धर्मको, नहि कर्मक्षयके हेतु को ।।२७५।।

"आचार" आदिक ज्ञान है, जीवादि दर्शन जानना ।
षट् जीवकाय चरित्र है ये कथन नय व्यवहारका ।२७६।

मुझ आत्मनिश्चय ज्ञान है, मुझ आत्मदर्शन चरित है ।
मुझ आत्म प्रत्याख्यान अरु मुझ आत्म सवर योग है ।२७७।

ज्यों फटिकमणि है शुद्ध, आप न रक्तरूप जु परिणमे ।
पर अन्य रक्त पदार्थसे, रक्तादिरूप जु परिणमे ।।२७८।।

त्यों ज्ञानि भी है शुद्ध, आप न रागरूप जु परिणमे ।
पर अन्य जो रागादि दूषण, उनसे वो रागी बने ।।२७९।।

कभी रागद्वेषविमोह अगर कषायभाव जु निजविषैं ।
ज्ञानी स्वयं करता नहीं, इससे न तत्कारक बने ।।२८०।।

पर रागद्वेषकषायकर्मनिमित्त होवें भाव जो ।
उनरूप जो जिव परिणमें फिर बाँधता रागादि को ।२८१।

यों रागद्वेषकषायकर्मनिमित्त होवें भाव जो ।
उनरूप आत्मा परिणमें वो बाँधता रागादिको ।।२८२।।

अनप्रतिक्रमण दो भाँति अनपचखाण भी दो भाँति है ।
जिवको अकारक है कहा इस रीतके उपदेशसे ।।२८३।।

अनप्रतिक्रमण दो द्रव्यभाव जु योंहि अनपचखाण है ।
जिवको अकारक है कहा इस रीतके उपदेशसे ।।२८४।।

अनप्रतिक्रमण अरु त्योंहि अनपचखाण द्रव्य रु भावका ।
जबतक करे है आतमा, कर्ता बनै है जानना ॥२८५॥

हैं अधःकर्मादिक जु पुद्गलद्रव्यके ही दोष ये ।
कैसे करे ज्ञानी, सदा परद्रव्यके जो गुणहि हैं ॥२८६॥

उद्देशि त्योंही अधःकर्मी पौद्गलिक यह द्रव्य जो ।
कैसे हि मुझकृत होय नित्य अजीव वर्णा जिसहिको।२८७।

❀ बंधाधिकार समाप्त हुआ ❀

९. अथ मोक्षाधिकारः

ज्यों पुरुष कोई बंधनों, प्रतिबद्ध है चिरकालका ।
वो तीव्र मंद स्वभाव त्यों ही काल जाने बंधका ॥२८८॥

पर जो करे नहिं छेद तो छूटे न, बंधनवश रहे ।
अरु काल बहुतहि जाय तो भी मुक्त वो नर नहिं बने ।२८९।

त्यों कर्मबंधनके प्रकृति, परदेश, स्थिति, अनुभागको ।
जाने भले छूटे न जिव, जो शुद्ध तो ही मुक्त हो ॥२९०॥

जो बंधनोंसे बद्ध वो नहिं बंधचिंतासे छुटे ।
त्यों जीव भी इन बंधकी चिंता करेसे नहिं छुटे ॥२९१॥

जो बंधनोंसे बद्ध वो नर बंधछेदनसे छुटे ।
त्यों जीव भी इन बंधनोंका छेद कर मुक्ती वरे ॥२९२॥

रे जानकर बंधन स्वभाव स्वभाव जान जु आत्मका ।
जो बंधमें हि विरक्त होवें, कर्म मोक्ष करें अहा ॥२९३॥

छेदन करो जिव बंधका तुम नियतनिज निज चिन्हसे ।
प्रज्ञा-छैनीसे छेदते दोनों पृथक् हो जाय हैं ॥२९४॥

छेदन होवे जिव बंधका जहँ नियत निज २ चिन्हसे ।
वह छोड़ना इस बधको, जिव ग्रहण करना शुद्धको ॥२९५॥

यह जीव कैसे ग्रहण हो ? जिवका ग्रहण प्रज्ञाहि से ।
ज्यों अलग प्रज्ञासे किया, त्यों ग्रहण भी प्रज्ञाहिसे ।२९६।

कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, चेतक है सो ही मैं हि हूँ ।
अवशेष जो सब भाव है, मेरेसे पर ही जानना ॥२९७॥

कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, दृष्टा है सो ही मैं हि हूँ ।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरेसे पर ही जानना ॥२९८॥

कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, ज्ञाता है सो ही मैं हि हूँ ।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरेसे पर ही जानना ॥२९९॥

सब भाव जो परकीय जाने, शुद्ध जाने आत्मको ।
वह कौन ज्ञानी "मेरा है यह" यों वचन-बोले अहो ।३००।

अपराध चौर्यादिक करै जो पुरुष वो शंकित फिरै ।
को लोकमें फिरते हुएको, चोर जान जु बांध ले ॥३०१॥

अपराध जो करता नहीं, निःशंक लोकविषैं फिरै ।
"बँध जाउंगा" ऐसी कभी, चिंता न उसको होय है ।३०२।

त्यों आतमा अपराधी "मैं बँधता हुं" यों हि सशंक है ।
अरु निरपराधी आतमा, "नांही बँधूं" निःशंक है ।३०३।

संसिद्धि, सिद्धि जु राध, अरु साधित अराधित एक है ।
ये राधसे जो रहित है, वो आतम अपराध है ।।३०४।।

अरु आतमा जो निरपराधी, होय है निःशंक वो ।
वर्ते सदा आराधनासे, जानना "मैं" आत्मको ।।३०५।।

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण त्यों परिहरण, निवृत्तिधारणा ।
अरु शुद्धि, निंदा, गर्हणा, ये अष्टविध विषकुंभ है ।३०६।

अनप्रतिक्रमण अनप्रतिसरण अनपरिहरण अनधारणा ।
अनिवृत्ति, अनगर्हा, अनिंद, अशुद्धि अमृतकुंभ है ।३०७।

❀ मोक्षाधिकारः समाप्त. ❀

१०. अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः

जो द्रव्य उपजे जिन गुणोंसे, उनसे जान अनन्य वो ।
है जगतमें कटकादि, पर्यायोंसे कनक अनन्य ज्यों ।३०८।

जिव-अजिवके परिणाम जो, शास्त्रोंविषैं जिनवर कहे ।
वे जीव और अजीव जान, अनन्य उन परिणामसे ।३०९।

उपजै न आत्मा कोइसे, इससे न आत्मा कार्य है ।
उपजावता नहिं कोइको, इससे न कारण भी बने ॥३१०॥

रे ! कर्मआश्रित होय कर्ता, कर्म भी करतारके ।
आश्रित हुवे उपजे नियमसे, अन्य नहिं सिद्धी दिखै ।३११।

पर जीव प्रकृतीके निमित्त जु, उपजता नशता अरे ।
अरु प्रकृतिका जिवके निमित्त, विनाश अरु उत्पाद है ।३१२।

अन्योन्यके जु निमित्त से यों, बंध दोनोंका बने ।
इस जीव प्रकृती उभयका, संसार इससे होय है ॥३१३॥

उत्पादव्यय प्रकृती निमित्त जु, जब हि तक नहिं परितजे ।
अज्ञानि, मिथ्यात्वी, असंयत, तब हि तक वो जिव रहे ।३१४।

ये आतमा जब ही करमका, फल अनंता परितजे ।
ज्ञायक तथा दर्शक तथा मुनि वोहि कर्मविमुक्त है ।३१५।

अज्ञानि स्थित प्रकृती स्वभाव सु, कर्मफलको वेदता ।
अरु ज्ञानि तो जाने उदयगत कर्मफल, नहिं भोगता ।३१६।

सद्रीत पढ़कर शास्त्र भी, प्रकृती अभव्य नहीं तजे ।
ज्यों दूध-गुड़ पीता हुआ भी सर्प नहिं निर्विष बने ।३१७।

वैराग्यप्राप्त जु ज्ञानिजन है, कर्मफल को जानता ।
कड़वे-मधुर बहुभाँतिको, इससे अवेदक है अहा ॥३१८॥

करता नहीं, नहिं वेदता, ज्ञानी करम बहुभाँतिको।
बस जानता ये बंध त्यों ही कर्मफल शुभ अशुभको ॥३१९॥

ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो।
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बध त्यों ही मोक्षको।३२०।

ज्यों लोक माने "देव नारक आदि जिव विष्णू करे"।
त्यों श्रमण भी माने कभी, "षट्कायको आत्मा करे"।३२१।

तो लोक-मुनि सिद्धांत एक हि, भेद इसमें नहिं दिखे।
विष्णू करे ज्यों लोकमतमें, श्रमणमत आत्मा करे।३२२।

इसभाँति लोक मुनी उभयका मोक्ष कोई नहि दिखे।
जो देव, मानव, असुरके, त्रयलोक को नित्यहि करे।३२३।

व्यवहारमूढ़ अतत्त्वविद् परद्रव्यको मेरा कहे।
"अणुमात्र भी मेरा न" ज्ञानी जानता निश्चयहि से ॥३२४॥

ज्यों पुरुष कोइ कहे "हमारा ग्राम, पुर अरु, देश है"।
पर वो नहीं उसका अरे, ! जिव मोहसें "मेरा" कहे।३२५।

इस रीत ही जो ज्ञानि भी 'मुझ' जानता परद्रव्यको।
वो जरुर मिथ्यात्वी बने, निजरूप करता अन्यको।३२६।

इससे "न मेरा" जान जिव, परद्रव्यमें इन उभयकी।
कर्तृत्वबुद्धि जानता, जाने सुदृष्टीरहितकी ॥३२७॥

मिथ्यात्व प्रकृती ही अगर, मिथ्यात्वि जो जिवको करे ।
तो तो अचेतन प्रकृति ही कारक बने तुझ मतविषैं ।३२८।

अथवा करे जो जीव पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको ।
तो तो बने मिथ्यात्वि पुद्गल द्रव्य आत्मा नहिं बने ।३२९।

जो जीव अरु प्रकृती करे मिथ्यात्व पुद्गल द्रव्यको ।
तो उभयकृत जो होय तत्फल भोग भी हो उभयको ।३३०।

जो प्रकृति नहिं नहिं जिव करे मिथ्यात्व पुद्गलद्रव्यको ।
पुद्गलदरव मिथ्यात्व अकृत, क्या न यह मिथ्या कहो ।३३१।

कर्महि करें अज्ञानि त्योंही ज्ञानि भी कर्महि करें ।
कर्महि सुलाते जीवको, त्यों कर्म ही जाग्रत करें ।।३३२।।

अरु कर्मही करते सुखी, कर्महि दुखी जिवको करे ।
कर्महि करे मित्यात्वि त्योंहि, असंयमी कर्महि करें ।३३३।

कर्महि भ्रमावे ऊर्ध्व लोक रु, अधः अरु तिर्यक् विषैं ।
अरु कुछ भी जो शुभ या अशुभ, उन सबको कर्महि करे ।३३४।

करता करम देता करम, हरता करम—सब कुछ करे ।
इस हेतुसे यह है सुनिश्चित जिव अकारक सर्व है ।।३३५।।

पुंकर्म इच्छे नारिको स्त्रीकर्म इच्छे पुरुषको ।
ऐसी श्रुती आचार्य्यदेव परम्परा अवतीर्ण है ।।३३६।।

इस रीत "कर्महि कर्मको इच्छे" कहा है शास्त्रमें ।
अब्रह्मचारी यों नहीं को जीव हम उपदेशमें ।।३३७।।

अरु जो हने परको, हनन हो परसे, वोह प्रकृत्ति है ।
इस अर्थमें परघात नामक कर्म का निर्देश है ।।३३८।।

इस रीत "कर्महि कर्मको हनता" कहा है शास्त्रमें ।
इससे न को भी जीव है हिंसक जु हम उपदेशमें ।।३३९।।

यों सांख्यका उपदेश ऐसा जो श्रमण वर्णन करे ।
उस मतसे सब प्रकृती करे जिवतो अकारक सर्व है ।३४०।

अथवा तु माने "आतमा मेरा स्व-आतमा को करे" ।
तो ये जो तुझ मंतव्य भी मिथ्या स्वभाव हि तुझ अरे ।३४१।

जिव नित्य है त्यों, है असंख्यप्रदेशि दर्शित समयमें ।
उससे न उसको हीन, त्योंहि न अधिक कोई कर सके ।३४२।

विस्तारसे जिवरूप जिवका, लोकमात्र प्रमाण है ।
क्या उससे हीन रु अधिक बनता द्रव्यको कैसे करे ।३४३।

माने तुँ 'ज्ञायकभाव तो ज्ञानस्वभाव स्थित रहे' ।
तो यों भि यह आतमा स्वयं निज आतमाको नहि करे ।३४४

पर्याय कुछसे नष्ट जिव, कुछसे न जीव विनष्ट है ।
इससे करै है वो हि या को अन्य नहि एकान्त है ।३४५।

पर्याय कुछसे नष्ट जिव, कुछसे न जीव विनष्ट है ।
यों जीव वेदै वो हि या को अन्य नहिं एकान्त है ।३४६।

जिव जो करै वह भोगता नहिं-जिसका यह सिद्धांत है ।
अर्हंतके मतका नहीं, वो जीव मिथ्यादृष्टि है ॥३४७॥

जिव अन्य करता अन्य वेदे जिसका यह सिद्धांत है ।
अर्हंतके मतका नहीं, वो जीव मिथ्यादृष्टि है ॥३४८॥

ज्यों शिल्पि कर्म करे परन्तू वो नहीं तन्मय बने ।
त्यों कर्मको आत्मा करे पर वो नहीं तन्मय बने ॥३४९॥

ज्यों शिल्पि करणोंसे करे पर वो नहीं तन्मय बने ।
त्यों जीव करणोंसे करे पर वो नहीं तन्मय बने ॥३५०॥

ज्यों शिल्पि करण ग्रहे परन्तू वो नहीं तन्मय बने ।
त्यों जीव करणोंको ग्रहे पर वो नहीं तन्मय बने ॥३५१॥

शिल्पी करमफल भोगता, पर वो नहीं तन्मय बने ।
त्यों जिव करमफल भोगता, पर वो नहीं तन्मय बने ।३५२।

इस भाँति मत व्यवहारका संक्षेप वक्तव्य है ।
सुनलो वचन परमार्थका, परिणामविषयक जो हि है ।३५३।

शिल्पी करे चेष्टा अवरु, उस ही से शिल्पि अनन्य है ।
त्यों जीव कर्म करे अवरु, उस ही से जीव अनन्य है । ३५४॥

चेष्टित हुआ शिल्पी निरंतर दुखित जैसे होय है ।
अरु दुखसे शिल्पि अनन्य, त्यों जिव चेष्टमान दुखी बने ।३५५।

ज्यों सेटिका नहिं अन्यकी, है सेटिका बस सेटिका ।
ज्ञायक नहीं त्यों अन्यका ज्ञायक अहो ज्ञायक तथा ।३५६।

ज्यों सेटिका नहिं अन्यकी, है सेटिका बस सेटिका ।
दर्शक नहीं त्यों अन्यका दर्शक अहो दर्शक तथा ॥३५७॥

ज्यों सेटिका नहिं अन्यकी, है सेटिका बस सेटिका ।
संयत नहीं त्यों अन्यका, संयत अहो संयत तथा ॥३५८॥

ज्यों सेटिका नहिं अन्यकी, है सेटिका बस सेटिका ।
दर्शन नहीं त्यों अन्यका, दर्शन अहो दर्शन तथा ॥३५९॥

यों ज्ञानदर्शनचरितविषयक कथन नय परमार्थका ।
सुनलो वचन सन्क्षेपसे, इस विषयमें व्यवहारका ॥३६०॥

ज्यों श्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वभावसे ।
ज्ञाता भि त्यों ही जानता, परद्रव्यको निज भावसे ।३६१।

ज्यों श्वेत करती सेटिका परद्रव्य आप स्वभावसे ।
आत्मा भि त्यों ही देखता परद्रव्यको निजभावसे ।३६२।

ज्यों श्वेत करती सेटिका परद्रव्य आप स्वभावसे ।
ज्ञाता भि त्यों हि त्यागता, परद्रव्यको निज भावसे ।३६३।

ज्यों श्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वभावसे।
सुदृष्टि त्यों ही श्रद्धता, परद्रव्यको निज भावसे॥३६४॥

यों ज्ञानदर्शनचरितमें निर्णय कहा व्यवहारका।
उरु अन्य पर्यय विषयमें भी इस प्रकार हि जानना।३६५।

चारित्र-दर्शन-ज्ञान किंचित् नहिं अचेतन विषयमें।
इस हेतुसे यह आतमा क्या हन सके उन विषयमें।३६६।

चारित्र-दर्शन-ज्ञान किंचित् नहिं अचेतन कर्ममें।
इस हेतुसे यह आतमा क्या हन सके उन कर्ममें॥३६७॥

चारित्र-दर्शन-ज्ञान किञ्चित् नहिं अचेतन कायमें।
इस हेतुसे यह आतमा क्या हन सके उन कायमें॥३६८॥

है ज्ञानका, सम्यक्तका, उपघात चारितका कहा।
वहाँ और कुछ भी नहिं कहा उपघात पुद्गल द्रव्यका।३६९।

जो जीवके गुण है नियत वे कोइ नहिं परद्रव्यमें।
इस हेतुसे सद्दृष्टि जिवको राग नहिं है विषयमें॥३७०॥

अरु राग, द्वेष, विमोह तो जिवके अनन्य परिणाम हैं।
इस हेतुसे शब्दादि विषयोंमें नहीं रागादि हैं॥३७१॥

को द्रव्य दुसरे द्रव्यमें उत्पाद नहिं गुणका करे।
इस हेतुसे सब ही दरब उत्पन्न आप स्वभावसे॥३७२॥

पुद्गल दरव बहु भाँति निंदा-स्तुतिवचनरूप परिणमें ।
सुनकर उन्हें 'मुझको कहा' गिन रोष तोष जु जिव करे ।३७३।

पुद्गलदरव शब्दत्वपरिणत, उसका गुण जो अन्य है ।
तो नहिं कहा कुछभी तुझे, हे अबुध ! रोष तुँ क्यों करे ।३७४।

शुभ या अशुभ जो शब्द वो 'तूँ सुन मुझे' न तुझे कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कर्णगोचर शब्दको ।३७५।

शुभ या अशुभ जो रूप वो 'तू देख मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे चक्षुगोचर रूपको ।।३७६।।

शुभ या अशुभ जो गंध वो 'तू सूंघ मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे घ्राणगोचर गंधको ।३७७।

शुभ या अशुभ रस कोई भी 'तू चाख मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे रसनगोचर स्वादको ।३७८।

शुभ या अशुभ जो स्पर्श वो 'तू स्पर्श मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कायगोचर स्पर्शको ।३७९।

शुभ या अशुभ गुण कोइ भी 'तू जान मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर गुण अरे ।३८०।

शुभ या अशुभ जो द्रव्य वो 'तू जान मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर द्रव्य रे ।३८१।

यह जानकर भी मूढ जिव पावे नहीं उपशम अरे !
शिवबुद्धिको पाया नहीं वो परग्रहण करना चहे ॥३८२॥

शुभ और अशुभ अनेकविध, के कर्म पूरव जो किये ।
उनसे निवर्ते आत्मको, वो आतमा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥

शुभ अरु अशुभ भावी करमका बध हो जिन भावमें ।
उनसे निवर्तन जो करे वो आतमा पचखाण है ॥३८४॥

शुभ और अशुभ अनेकविध हैं उदित जो इस कालमें ।
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है ॥३८५॥

पचखाण नित्य करे अरू प्रतिक्रमण जो नित्यहि करे ।
नित्यहि करे आलोचना वो आतमा चारित्र है ॥३८६॥

जो कर्मफलको वेदता जिव कर्मफल निजरुप करे ।
वो पुनः बाँधे अष्टविधके कर्मको–दुखबीज को ॥३८७॥

जो कर्मफलको वेदता जाने करमफल मैं किया ।
वो पुनः बांधे अष्टविधके कर्मको दुखबीजको ॥३८८॥

जो कर्मफलको वेदता जिव सुखी दुःखी होय है ।
वो पुनः बांधे अष्टविधके कर्मको–दुखबीजको ॥३८९॥

रे ! शास्त्र है नहिं ज्ञान क्योंकी शास्त्र कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु शास्त्र अन्य प्रभू कहे ॥३९०॥

रे ! शब्द है नहिं ज्ञान क्योंकी शब्द कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु शब्द अन्य प्रभू कहे ॥३९१॥

रे ! रूप है नहिं ज्ञान क्योंकी रूप कुछ जानें नहीं ।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु रूप अन्य प्रभू कहे ॥३९२॥

रे ! वर्ण है नहिं ज्ञान क्योंकी वर्ण कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु वर्ण अन्य प्रभू कहे ॥३९३॥

रे ! गंध है नहिं ज्ञान क्योंकी गंध कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु गंध अन्य प्रभू कहे ॥३९४॥

रे ! रस नहीं है ज्ञान क्योंकी रस जु कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य रस जिनवर कहे ॥३९५॥

रे ! स्पर्श है नहि ज्ञान क्योंकी स्पर्श कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु स्पर्श अन्य प्रभू कहे ॥३९६॥

रे ! कर्म है नहि ज्ञान क्योंकी कर्म कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु कर्म अन्य जिनवर कहे ।३९७।

रे ! धर्म नहिं है ज्ञान क्योंकी धर्म कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु धर्म अन्य जिनवर कहे ।३९८।

नहिं है अधर्म जु ज्ञान क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य अधर्म अन्य जिनवर कहे ॥३९९॥

रे ! काल है नहिं ज्ञान क्योंकी काल कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु काल अन्य प्रभू कहे ॥४००॥

आकाश है नहि ज्ञान क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं ।
इस हेतुसे आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य प्रभू कहे ॥४०१॥

रे ! ज्ञान अध्यवसान नहिं, क्योंकी अचेतन रूप है ।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य अध्यवसानहै ॥४०२॥

रे ! सर्वदा जाने हि इससे जीव ज्ञायक ज्ञानि है ।
अरु ज्ञान है ज्ञायकसे अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है ।४०३।

सम्यक्त्व अरु संयम तथा पूर्वागगत सब सूत्र जो ।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञानको ॥४०४॥

यों आतमा जिसका अमूर्तिक वो न आहारक बने ।
पुद्गलमयी आहार यों आहार तो मूर्तिक अरे ॥४०५॥

जो द्रव्य है पर, ग्रहण नहिं-नहिं त्याग उसका हो सके ।
ऐसा हि उसका गुण कोई प्रायोगि अरु वैस्रसिक है ।४०६।

इस हेतुसे जो शुद्ध आत्मा वो नहीं कुछ भी ग्रहै ।
छोड़े नहीं कुछ भी अहो ! परद्रव्य जीव अजीव में ।४०७।

मुनिलिंगको अथवा गृहस्थीलिगको बहुभाँतिके ।
ग्रहकर कहत है मूढ़जन, 'यह लिंग मुक्तीमार्ग है' ।४०८।

वह लिंग मुक्तीमार्ग नहिं, अर्हंत निर्मम देहमें ।
बस लिंग तजकर ज्ञान अरु चारित्र दर्शन सेवते ॥४०९॥

मुनिलिंग अरु गृहिलिंग ये नहिं लिंग मुक्तीमार्ग है ।
चारित्र-दर्शन-ज्ञानको बस मोक्षमार्ग प्रभू कहें ॥४१०॥

यों छोड़कर सागार या अनगार धारित लिंगको ।
चारित्र दर्शन-ज्ञानमें तू जोड़रे ! निज आत्मको ॥४११॥

तू स्थाप निजको मोक्षपथमें ध्या अनूभव तू उसे ।
उसमें हि नित्य विहार कर न विहार कर परद्रव्यमें ।४१२

बहुभाँतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थीलिंग जो ।
ममता करे उनमें नहीं जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥

व्यवहारनय, इन लिंग द्वयको मोक्षके पथमें कहे ।
निश्चय नहीं माने कभी को लिंग मुक्तीपंथमें ॥४१४॥

यह समयप्राभृत पठन करके जान अर्थ रु तत्त्वसे ।
ठहरे अरथमें जीव जो वो, सौख्य उत्तम परिणमे ।४१५।

❀ सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार समाप्त. ❀

❖